विषय-सूची

भूमिका 2-5

1. अध्याय एक: जीवन परिचय: बाकी सब बुरी तरह कुशल है! 6-48
2. अध्याय दो: प्रतिष्ठा का संघर्ष: बड़ी इज्जत बख्शी है यारों ने! 49-82
3. अध्याय तीन: राजनीतिक संघर्ष: पार्टनर, तुम्हारी पॉलिटिक्स क्या है? 83-115
4. अध्याय चार: अलक्षित मुक्तिबोध: अभी अलिखित पुस्तक हूं! 116-130
5. सारांश 131-135
6. संदर्भ-सूची 136-140

भूमिका

भूमिका

'पत्र' संस्कृत भाषा का शब्द है। यह 'पत्' धातु में 'ष्ट्रन' प्रत्यय जोड़ने से बना है जिसमें 'पत्' धातु का अर्थ है 'गिरना, गिर पड़ना, नीचे आना, उतरना आदि। इस प्रकार व्युत्पत्ति के आधार पर 'पत्र' का अर्थ होगा: 'जो गिरता है, नीचे आता है, अर्थात् वृक्ष का पत्ता'।

आत्माभिव्यक्ति साधारण मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। साहित्य निर्माण के क्षेत्र में यही प्रविति मुख्य रूप से कार्य करती है। पत्र अभिव्यक्ति अथवा आत्माभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम होता है। व्यक्ति जो बात प्रत्यक्ष रूप से नहीं कह पाता वह परोक्ष रूप से पत्रों में अभिव्यक्त हो जाती है। पत्र में व्यक्ति अधिक सहज रूप से अपनी बात को अभिव्यक्त कर सकता है। वैसे तो साहित्य की सभी विधाओं में आत्माभिव्यक्ति की प्रवृत्ति कुछ न कुछ अवश्य होती है किन्तु पत्र-साहित्य में वह प्रत्यक्ष एवं यथार्थ रूप में अभिव्यक्त होती है। लेखक और उनके द्वारा लिखे गए पत्र के बीच प्रत्यक्ष और आत्मदर्शी संबंध होता है। लेखक जीतने स्पष्ट और ईमानदारी से अपनों पत्रों द्वारा अभिव्यक्ति पाते हैं उतना साहित्य के किसी भी विधाओं में नहीं खुल पाते। पत्र का लेखक के व्यक्तित्व से सीधा संबंध होता है। इसीलिए ऐसा कहा गया है कि पत्र-साहित्य का सबसे बड़ा महत्त्व इसी बात में है कि इसमें लेखक के व्यक्तित्त्व की झलक अधिक रहती है। जैसे- **'Indeed all literary composition enables the reader to see the character of writer, but none does this so clearly as the letters.** पत्रों का महत्त्व इसलिए भी अधिक होता है कि उसमें भावना की अभिव्यक्ति बहुत स्वाभाविक रूप में होती है और उसकी विश्वसनीयता बनी रहती है।

पत्र एक वैयक्तिक विधा है। उत्तम पत्र प्रकाशन की दृष्टि से नहीं लिखे जाते। पत्र व्यक्तिगत धरोहर होती है जिसमें गोपनियता अनिवार्य होती है। इसे केवल वही व्यक्ति पढ़ सकता है जिसके लिए वह लिखी जाती है। इसी कारण पत्र लेखक ज्यादा खुलकर अपनी बातों को अभिव्यक्त कर पाता है। यदि लेखक को यह पता चल जाये कि उनके पत्र को प्रकाशित किया जाएगा तब पत्र में स्पष्टता और शुद्धता नहीं आ पाएगी। तब उसमें स्वाभाविकता नहीं कृत्रिमता की प्रधानता हो जाएगी। क्योंकि पत्र आत्म-प्रकाशन की दृष्टि से सबसे अधिक महत्वपूर्ण होते हैं जो स्नेहियों, घनिष्ठ मित्रों और निकटतम संबंधियों को लिखे जाते हैं जिसमें व्यक्तिक और सामाजिक का भेद बहुत कम हो जाता है। इसलिए साहित्य में जिन पत्रों का सर्वाधिक महत्त्व समझा गया है वह अधिकांश निजी या व्यक्तिक पत्र ही है। इसलिए उसका प्रकाशित होना पत्र-लेखक की भावनाओं से खिलवाड़ करने जैसा माना गया है। पंडित बनारसीदास चतुर्वेदी ने जब डॉक्टर वासुदेवशरण अग्रवाल के व्यक्तिगत पत्रों को प्रकाशित कर

दिया तब अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए अग्रवाल साहब ने कहा था कि 'आपने मेरे पत्रों को छपवाकर पत्र लिखने की स्वतंत्रता को जैसे कुंठित कर दिया है। प्रवाह में बहुत-सी बातें लिख जाती थी। संभव है, वैसा अब न होग'।

आज पत्र-साहित्य का महत्त्व कम हो जाने का मुख्य कारण पत्र का प्रकाशन ही है। एक तरफ मशीनीकरण और तकनीकी विकास के कारण अब हस्तलिखित पत्रों का महत्त्व कम होता जा रहा है तो दूसरी तरफ उसकी गोपनियता के उल्लंघन के कारण। हिंदी में अब केवल नामोल्लेख के लिए ही पत्र-साहित्य मिलता है क्योंकि उसकी स्थिति अब पहले जैसी नहीं रह गयी है। इसका मुख्य कारण पत्र की वैयक्तिकता और गोपनियता को सार्वजनिक करना है। सहज रूप से अनजाने में ही जो पत्र लिखी जाती है और जिस तरह की स्वाभाविक से स्वाभाविक बातें उनमें कही जाती है वह प्रकाशन की दृष्टि से लिखे गए पत्रों में नहीं लिखी जा सकती और नहीं कही जा सकती है। क्योंकि जो बातें ग्रन्थों में न लिखी जाती है और न कही जाती है वह छोटे-से पत्र के द्वारा अभिव्यक्त हो जाती है। किशोरीदास वाजपेयी ने ठीक ही कहा है कि **'अति दुरूह विस्तृत जीवन जो/ग्रन्थों में है नहीं समाता/वह किसी के एक पत्र में/ज्यों का त्यों पूरा बंध जाता'।** इन पत्रों में भी उन पत्रों का महत्त्व सबसे अधिक होता है जो अनजाने में ही लिखा जाता है और जिसमें इस बात का जरा भी संदेह नहीं होता कि भविष्य में उसे प्रकाशित भी किया जा सकता है। इसीलिए जब नामवर सिंह ने **'आलोचना'** पत्रिका के लिए प्रकाशन हेतु नेमिचन्द्र जैन से मुक्तिबोध द्वारा लिखे गए पत्रों की मांग की तब नेमिचन्द्र जैन ने पत्र देने से मना कर दिया था। बाद में नामवर सिंह के आग्रह करने पर पत्रों के प्रकाशन हेतु नेमिचन्द्र जैन ने नामवर सिंह को मुक्तिबोध द्वारा लिखा गया पत्र दे दिया। उन पत्रों को पढ़ने के बाद ही मुक्तिबोध की वास्तविक अवस्था के बारे में पाठक को जानकारी मिल सकी जिसमें उनके जीवन संघर्षों का स्वरूप स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। यह संघर्ष जिन रूपों में अभिव्यक्त हुआ है उन्हीं संघर्षों के आधार पर इस शोध विषय के सभी शीर्षकों का निर्धारण किया गया है।

पहले अध्याय के अंतर्गत मुक्तिबोध के व्यक्तिगत जीवन परिचय के बारे में संक्षेप में जानकारी दी गयी है जिसमें उनके घरेलू संघर्षों का अध्ययन मनन किया गया है और उन तथ्यों की खोज करने का प्रयास किया गया है जिसके कारण मुक्तिबोध को यह कहना पड़ा था कि **'बाकी सब बुरी तरह कुशल है'।** वास्तव में मुक्तिबोध अपने सम्पूर्ण जीवन में बुरी तरह ही कुशल रहे अच्छी तरह नहीं। इस अध्याय को क्रमशः पांच भागों में बांट कर मुक्तिबोध के व्यक्तिगत जीवन को समझने का प्रयास किया गया है। इस अध्याय को निम्न पांच भागों में विभाजित किया गया है- **जन्म, सिक्षा, विवाह, नौकरी और मृत्यु** आदि। इस अध्याय में इन सभी बिन्दुओं का सूक्ष्म निरीक्षण किया गया है।

दूसरे अध्याय के अंतर्गत यह देखने का प्रयास किया गया है कि मुक्तिबोध अपने समकालीन अन्य कवियों और कलाकारों की भांति क्यों नहीं प्रतिष्ठित हो सके। उनकी इतनी आलोचना क्यों की गयी जिसके लिए मुक्तिबोध को यह कहना पड़ा कि **'बड़ी इज्जत बख्शी है यारों ने'**। इसी दौरान वह **'तार सप्तक'** नामक पत्रिका से भी जुड़े जिनमें रामविलास शर्मा और नेमिचन्द्र जैन जैसे उनके अन्य सहयोगी मित्र भी शामिल थे। लेकिन एक रचनात्मक समूह में रहते हुए भी उनमें वैचारिक एकता स्थापित नहीं हो सकी। इसके अतिरिक्त और भी अन्य पत्र-पत्रिकाओं में मुक्तिबोध लगातार लिखते-छपते रहे फिर भी वह अपने अन्य मित्रों की भांति प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं कर सके। उल्टे उनकी आलोचना ही की गयी। यहां तक कि उनकी पुस्तक **'भारत: इतिहास और संस्कृति'** को भी प्रतिबंधित कर दिया गया। इन्हीं सब बातों का अध्ययन इस अध्याय में किया गया है।

तीसरे अध्याय के अंतर्गत मुक्तिबोध के राजनीतिक संघर्षों की खोज की गयी है जिसमें मुक्तिबोध की राजनैतिक विचारधारा के बारे में जानने का प्रयास किया गया है। मुक्तिबोध नेमिचन्द्र जैन की मार्क्सवादी विचारधारा से बहुत प्रभावित थे और स्वयं को भी उन्होंने मार्क्सवादी बताया है। जबकि उनके जानने वालों का मानना है कि मुक्तिबोध सुविधाभोगी, अस्तित्ववादी, समाजवादी या साम्यवादी हैं। लेकिन वास्तव में मुक्तिबोध किस राजनैतिक विचारधारा के प्रवाह में थे यह जानने का प्रयास इस अध्याय में किया गया।

चौथे अध्याय के अंतर्गत यह जानने का प्रयास किया गया है कि वास्तव में हमने मुक्तिबोध की पहचान कर ली है या अभी भी उनकी पहचान शेष है। जबकि मुक्तिबोध ने स्वयं यह कहा है कि **'अभी अलिखित पुस्तक हूं'**। इसलिए इस अध्याय में यह सिद्ध करने का प्रयास किया गया है कि मुक्तिबोध अभी भी अंधेरे में ही है, अलक्षित है।

आभार

इस लघु शोध-प्रबंध को पूरा करने में मेरे शोध निर्देशक **प्रो. कृष्ण कुमार सिंह जी** ने समय-समय पर मेरा मार्गदर्शन किया और शोध से सबंधित कुछ महत्त्वपूर्ण पुस्तकों के बारे मेंभी बताया। इसके लिए मैं अपने शोध-निर्देशक का बहुत-बहुत आभार व्यक्त करता हूं। इसके साथ ही मेरे कई साथियों ने भी इस कार्य में मेरी सहायता की जिनमें साजन भारती, अनुराग कुमार पाण्डेय, भानु कुशवाहा, संजीव कुमार निषाद, मेहराज अली और जुगुल किशोर चौधरी प्रमुख है। इन साथियों ने कम्प्यूटर से संबंधित सभी जानकारियां मुझे दी।इसलिए मैं इनका भी बहुत-बहुत आभार व्यक्त करता हूं।

5. सारांश

सारांश

घरेलू दायित्वों को निभाते हुए मुक्तिबोध कबीर के बहुत करीब लगते हैं। गरीबी और फटेहाली में भी उन्होंने चाय का शौक नहीं छोड़ा और अंत तक लोगों के बीच बीड़ी फूंकते हुए मध्यवर्गीय जीवन को त्याग कर आम इंसान की जिंदगी जिया। मध्यप्रदेश के श्योपुर गांव, जिला मुरैना में 13 नवंबर 1917 को रूसी क्रांति के दौर में रात के दो बजे कुलकर्णी ब्राह्मण परिवार में जन्मे मुक्तिबोध पर अपने ब्रांग पुलिस अफसर पिता के रौब का असर जरूर रहा लेकिन मध्यवर्गीय रिहायसीपन उनमें नाम मात्र भी नहीं थी। मुक्तिबोध बहुत ही साधारण किन्तु प्रतिभा के असाधारन और ईमानदार इंसान थे। पैतृक संस्कार उन्हें परिवार से ही मिली थी लेकिन उन संस्कारों का वह दास बनकर उसका अनुकरण कभी नहीं किया। निडरता और प्रतिरोध की भावना उनमें बचपन से ही थी। छोटी अवस्था में भी किसी के गलती करने पर हाथ में डंडा लेकर उसे सबक सीखा सकते थे। बेटे की इस बहादुरी पर पिता भी बहुत प्रसन्न थे। वैसे भी पहले दो लड़के के गुजर जाने के कारण परिवार के सभी सदस्य मुक्तिबोध को बहुत प्यार करते थे। इस लाड़-प्यार का परिणाम यह हुआ कि मुक्तिबोध दिन प्रतिदिन जिद्दी होते चले गए औ उनका यह जिद तब और ज्यादा हावी हो गया जब उन्हें शांताजी से प्यार हुआ। क्योंकि शांताजी हैसियत में मुक्तिबोध के परिवार से न केवल कमजोर थी बल्कि उनकी बुआ के घर की नौकरानी भी थी। इसलिए परिवार के सभी सदस्य उनके प्रेम और विवाह के खिलाफ थे लेकिन मुक्तिबोध के जिद्द के कारण घरवालों को झुकना पड़ा तब और इस प्रकार मुक्तिबोध का शांताजी से विवाह सम्पन्न हुआ। मुक्तिबोध का यह पहला क्रांतिकारी कदमथा।

शादी के बाद पारिवारिक जीवन के निर्वाह में उन्हें आजीवन घोर कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। मुक्तिबोध के पिता की इच्छा थी कि मुक्तिबोध अच्छी नौकरी करें और उनके रिटायरमेंट के बाद घर की ज़िम्मेदारी अपने कंधों पर लें। ऐसा हो भी सकता था। लेकिन मुक्तिबोध तब सरकारी नौकरी करना सरकारी गुलाम होना मानते थे। इसलिए सरकारी गुलामी करने से बेहतर अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध भारतीय युवाओं में स्वाधीनता के प्रति नवीन चेतना फैलाने का काम ही उन्हें अधिक पसंद आया। नारायण विष्णु जोशीजी के साथ **'शारदा शिक्षा सदन'** से जुड़ना मुक्तिबोध का देश के प्रति इसी प्रतिबद्धता को दर्शाता है। **'शारदा शिक्षा सदन'** में उन्हें नारायण विष्णु जोशी और नेमिचन्द्र जैसे सहयोगी मिले जिनका मुक्तिबोध पर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा जिसके कारण मुक्तिबोध पहली बार अपनी छायावादी आदर्श की दुनिया को त्यागकर यथार्थ की दुनिया में कदम रखा। नेमिचन्द्र के संपर्क में आकर मुक्तिबोध मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित हुए और बढ़ चढ़कर मार्क्सवादी गतिविधियों में हिस्सा लेने लगे। इन्हीं गतिविधियों के कारण उन्होंने ऑर्डिनेंस फैक्टरी की नौकरी छोड़ दी थी ।

क्योंकि नौकरी करते हुए वह कम्युनिस्ट पार्टी का सदस्य नहीं बन सकते थे। तब ऐसा करना गैर-कानूनी समझा जाता था, इसलिए उन्होंने यह नौकरी छोड़ दी।

मार्क्सवाद के प्रति मुक्तिबोध के मन में गहरी आस्था थी। लेकिन तब मार्क्सवादी होना सुरक्षित नहीं था। हमेशा जान का खतरा बना रहता था। मुक्तिबोध को भी इसका भय था। इसलिए हर अपरिचित व्यक्ति उनकी नजर में **सी.आई.डी.** का आदमी लगता था। जब कोई व्यक्ति उनसे मिलने के लिए आता था तो सबसे पहले वह यह सुनिश्चित कर लेते थे कि मिलने वाला व्यक्ति किस विचारधारा से संबंध रखता है। अकसर वे समान विचधारा वाले व्यक्ति से ही बातचीत और मेल जोल रखते थे। मुक्तिबोध का **आत्म-संघर्ष** व्यक्तिक और सामाजिक दोनों स्तर पर ही रहा है। मुक्तिबोध ने कहा है कि **'मेरे मन में ही छटपटाती गति रही है- निजी और सामाजिक। अब तक की जीवन-यात्रा के संघर्ष में मेरी छटपटाती गति रही है- परिवार और राष्ट्र की क्रांति की दिशा'।**[218]

ऐसा नहीं है कि मुक्तिबोध सरकारी नौकरी करना ही नहीं चाहते थे। अगर कोई अच्छी सरकारी नौकरी मिलती तो वह जरूर करते। यह इच्छा उन्होंने नेमिचन्द्र जैन से की भी थी कि बिहार या उत्तरप्रदेश किसी भी राज्य में कोई अच्छी नौकरी हो तो उन्हें सूचित कर दें। नौकरी न करने की वजह ही यही थी कि जैसा वह चाहते थे वैसा काम उन्हें नहीं मिला और जो मिला भी वह उन्हें पसंद नहीं आया इसलिए एक के बाद एक नौकरी पकड़ते-छोड़ते चले गए। सन् 1938 में वह **'शारदा शिक्षा सदन'** से जुड़े थे किन्तु षड्यंत्रकारियों द्वारा इस सदन को बंद करवा देने के कारण सन् 1938 से 1958 तक मुक्तिबोध स्थायी नौकरी के लिए भटकते रहे। बीस वर्ष के इस लंबे संघर्षमय जीवन को मुक्तिबोध अपने लिए अंधकार काल मानते थे। इस लंबे भटकाव के बाद सन् 1958 में उन्हें राजनांदगांव में स्थायी नौकरी मिल गयी। मन मुताबिक काम न मिलने का एक मुख्य कारण उनका एम.ए. पास न होना भी था। इस बात को उन्होंने स्वीकार भी किया है कि हर जगह एम.ए. फर्स्ट क्लास मांगा जाता है जबकि वह स्वयं एम.ए. सेकेंड क्लास है। लेक्चरार बनने की उनकी हार्दिक इच्छा थी जबकि लेक्चरार की न्यूनतम योग्यता एम.ए. थी जो वे थे नहीं कि कॉलेज में प्रोफेसर की नौकरी उन्हें मिलती पाती। बहुत बाद में एम.ए. करने के बाद उनकी यह इच्छा राजनंदगांव आकर पूरी हुई। लेकिन यहां भी जब उन्हें यह पता चला कि उनकी नियुक्ति में एक महिला की योग्यता के साथ न्याय नहीं हुआ है तब वह यह नौकरी भी छोड़ने के लिए तैयार हो गए थे क्योंकि योग्यता के आधार पर उस पद

[218] शर्मा, विष्णुचन्द्र. (२००४). *मुक्तिबोध की आत्मकथा*. मेरठ : संवाद प्रकाशन,पृष्ठ सं-342

के लिए वह महिला मुक्तिबोध की अपेक्षा ज्यादा दावेदार थी। लेकिन अनुभव के आधार पर यह नौकरी मुक्तिबोध को ही दी गयी।

अपने जीवन संघर्षों के दौरान मुक्तिबोध ने बहुत कष्ट सहा था। शारीरिक और मानसिक परेशानियां भी झेली थी। एक तरफ वह अपने आत्म-संघर्ष से जूझ रहे थे तो दूसरी तरफ आलोचना और उपेक्षा की मार झेल रहे थे। यहां तक कि **'तार सप्तक'** के उनके सहयोगी डॉक्टर रामविलास शर्मा ने भी मुक्तिबोध की खूब आलोचना की। उन्होंने ही सर्वप्रथम मुक्तिबोध को व्यक्तिवादी घोषित किया जिस बात का मुक्तिबोध को आजीवन बहुत खेद रहा है। दोनों का सैद्धान्तिक पक्ष समान होते हुए भी व्यावहारिकता में दोनों का संबंध अपरिचित ही रहा। शर्माजी को निराला की प्रगतिशील चेतना तो दिखाई दी लेकिन मुक्तिबोध की प्रगतिशील चेतना उन्हें क्यों नहीं दिखाई दी? शर्माजी ही नहीं, उस समय के तमाम धुरंधर प्रगतिशील आलोचक और रचनाकार सब मुक्तिबोध की आलोचना कर रहे थे। रामविलस शर्मा स्वयं एक बहुत बड़े इतिहास मर्मज्ञ थे लेकिन उन्होंने मुक्तिबोध की ऐतिहासिक दृष्टि पर उस समय भी कोई टिप्पणी नहीं की जब उनकी पुस्तक पर प्रतिबंध लगाया जा रहा था। इसलिए मुक्तिबोध और रामविलस शर्मा के ऐतिहासिक दृष्टिकोण का तुलनात्मक अध्ययन किया जाना शोध का विषय हो सकता है। इसके साथ ही उन तमाम प्रगतिशीलों की विचारधाराओं से मुक्तिबोध की प्रगतिशील विचारधारा का तुलनात्मक अध्ययन भी शोध का विषय हो सकता है। इन विरोधों के कारण अपने सम्पूर्ण जीवन में शायद ही मुक्तिबोध ने कभी चैन की सांस ली होगी। पारिवारिक और साहित्यिक दोनों मोर्चे पर वह पराजित होते रहे। मुक्तिबोध की पुस्तक **'भारत: इतिहास और संस्कृति'** जब छपकर बाजार में आई तब मुक्तिबोध के मन में यह उम्मीद जगी कि अब उनकी हालत में कुछ सुधार होगा, लेकिन विरोधियों ने उनके इस सपने को भी साकार नहीं होने दिया और जनसंघियों के साथ कुछ परंपरावादी लेखक और विरोधी संपादकों ने मिलकर मध्यप्रदेश सरकार पर दवाब डालकर उस पुस्तक पर प्रतिबंध लगवा दिया। विरोधियों ने यह आरोप लगाया कि इस पुस्तक में हिन्दू धर्म और विशेष रूप से जैनियों के धर्म को ठेंस पहुंचाई गयी है। मुक्तिबोध ने ठोस प्रमाण के साथ अपनी बातों को पुष्ट करने की बहुत कोशिश की परंतु सरकार ने उनकी बातों को मानने से इंकार कर दिया। इस घटना ने मुक्तिबोध सबसे ज्यादा दुःख पहुंचाई है। तभी मुक्तिबोध ने हरिशंकर परसाई को कहा था कि **'यह नंगा फासीवाद है। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता जा रही है। गला दबाकर आवाज घोंटी जा रही है'।**

1962 में जब मध्यप्रदेश सरकार ने इस पुस्तक पर प्रतिबंध लगाया लगाया तब मुक्तिबोध की सारी उम्मीदें ध्वस्त हो गयीं। इस सदमें से मुक्तिबोध उबर भी नहीं पाये थे कि 7 फरवरी 1964 को उन

पर पक्षाघात हुआ और वह मूर्छित होकर ऐसे गिरे कि फिर उठ न सके और अंततः 11 सितंबर 1964 को रात नौ बजकर पांच मिनट पर उनका देहांत हो गया। जो मुक्तिबोध अपने जीवन काल में उपेक्षित रहे वह अपने अंतिम क्षणों में बहुत बड़े रचनाकार के रूप में उभकर सामने आए। मृत्यु के बाद तो उन्हें नयी कविता का नायक ही घोषित कर दिया गया। जो मुक्तिबोध अपने जीवन में अपनी एक भी रचना नहीं देख सके उन पर आज कई पुस्तकें लिखी जा चुकी है और लिखी भी जा रही है। उन पर तमाम शोधकार्य हो चुके हैं और किए भी जा रहे हैं। यह भी दाबा किया जाता है कि जो मुक्तिबोध अपने सम्पूर्ण जीवन में अंधेरे में ही भटकते रहे वह अब प्रकाश में आ चुके हैं। जो अपने सम्पूर्ण जीवन में अलक्षित रहे उन्हें लक्षित कर लिया गया है। मोतीराम वर्मा ने **'लक्षित मुक्तिबोध'** नामक एक शोध परक एक पूरी पुस्तक लिखी है जिसमें उन्होंने मुक्तिबोध को लक्षित करने का प्रयास किया है। लेकिन उनका यह प्रयास अभी अधूरा है। मुक्तिबोध आज भी अलक्षित है वरना ऋतुराज को यह कहने की जरूरत ही नहीं पड़ती कि **'कवि को मर जाने दो/तभी वह वर्णनीय होगा'।** ऋतुराज की यह पंक्ति यह प्रमाणित करती है कि मुक्तिबोध आज भी अंधेरे में ही है और तब तक मुक्तिबोध को लक्षित नहीं किया जा सकता जब तक कि असली प्रतिभा सड़कों पर भटकती रहेगी और चाटुकार अवसरवादी लोग अकादमिक क्षेत्र में अपनी जड़ जमाये रहेंगे।

6. संदर्भ-सूची

संदर्भ-सूची

Bibliography

अग्रवाल, भ. (1974). *पूर्वाग्रह (सं-9).*

अज्ञेय, स. (2000). *तार सप्तक .* नई दिल्ली : भारतीय ज्ञानपीठ .

ऋतुराज. (2014). *फेरे (काव्य संग्रह).* इलाहाबाद : साहित्य भंडार .

गौतम, ल. (2001). *मुक्तिबोध: व्यक्ति, अनुभव और अभिव्यक्ति .* दिल्ली : नया साहित्य केंद्र .

जैन, न. (2011). *मुक्तिबोध रचनावली .* नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन .

जैन, न. (1998). *मुक्तिबोध रचनावली,भाग-6 .* मेरठ : संवाद प्रकाशन .

नवल, न. (2005). *मुक्तिबोध: ज्ञान और संवेदना .* नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन .

परसाई, ह. (1968). *आलोचना .*

परसाई, ह. (1965). *राष्ट्रवाणी: वह तेजस्वी पीड़ा .*

पुंजाणी, ड. क. (1983). *हिन्दी का पत्र-साहित्य .* अजमेर : आशीष प्रिन्टर ब्रह्मपुरी .

प्रसाद, ड. र. *तार सप्तक के कवियों की समाज चेतना .*

मदारिया, श. म. *गजानन माधव मुक्तिबोध: सांप और सीढ़ी का खेल .*

माचवे, प. (1964). *धर्मयुग: दिल्ली में मुक्तिबोध .*

मुक्तिबोध. *कामायनी एक पुनर्विचार .*

मुक्तिबोध के पत्र . (1965).

मुक्तिबोध. *चांद का मुंह टेढ़ा है .*

मुक्तिबोध द्वारा राज्यपाल मध्यप्रदेश भोपाल के लिए तैयार किया गया स्पष्टीकरण .

मुक्तिबोध. *मेरी पुस्तक के विरुद्ध आंदोलन की एक संक्षिप्त रूप-रेखा- स्पष्टीकरण .*

मुक्तिबोध. *राष्ट्रभारती: मेरी मां ने मुझे प्रेमचन्द्र का भक्त बनाया .*

राष्ट्रवाणी . (1965).

वर्मा, म. (2004). *लक्षित मुक्तिबोध.* नई दिल्ली : नेशनल पब्लिकेशन .

वर्मा, श. (1965). *ज्ञानोदय: ब्रह्मराक्षस का शिष्य .*

वर्मा, श. (1965). *मुक्तिबोध के पत्र .*

शर्मा, ज. *मुक्तिबोध: व्यक्तित्व और कृतित्व .*

शर्मा, प. *भोपाल में मुक्तिबोध.*

शर्मा, र. *प्रगतिशील काव्यधारा और केदारनाथ अग्रवाल .*

शर्मा, व. (2004). *मुक्तिबोध की आत्मकथा .* मेरठ : संवाद प्रकाशन .

शर्मा, व. (२००४). *मुक्तिबोध की आत्मकथा .* मेरठ : संवाद प्रकाशन .

सं.गौतम. *गजानन माधव मुक्तिबोध.*

Bibliography

अग्रवाल, भ. (1974). *पूर्वाग्रह (सं-9).*

अज्ञेय, स. (2000). *तार सप्तक .* नई दिल्ली : भारतीय ज्ञानपीठ .

ऋतुराज. (2014). *फेरे (काव्य संग्रह).* इलाहाबाद : साहित्य भंडार .

गुप्त, ड. आ. (1993). *जटिल संवेदना के कवि मुक्तिबोध .* अहमदाबाद : पार्श्व प्रकाशन .

गौतम, ल. (2001). *मुक्तिबोध: व्यक्ति, अनुभव और अभिव्यक्ति .* दिल्ली : नया साहित्य केंद्र .

जैन, क. (2014). *महागुरु मुक्तिबोध: जुम्मा टैंक की सीढ़ियों पर .* नई दिल्ली : सामयिक प्रकाशन .

जैन, न. (2011). *मुक्तिबोध रचनावली .* नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन .

जैन, न. (2011). *मुक्तिबोध रचनावली .* नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन .

जैन, न. (1998). *मुक्तिबोध रचनावली,भाग-6 .* मेरठ : संवाद प्रकाशन .

ठाकुर, स. *मुक्तिबोध: पुनर्मूल्यांकन .* आगरा : प्रगति प्रकाशन .

तिवारी, ड. प. (1985). *मुक्तिबोध की समीक्षा-दृष्टि .* इलाहाबाद : ग्रंथभारती .

नवल, न. (2005). *मुक्तिबोध: ज्ञान और संवेदना .* नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन .

नवल, न. (2005). *मुक्तिबोध: ज्ञान और संवेदना .* नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन .

नवल, न. (2005). *मुक्तिबोध: ज्ञान और संवेदना*. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन .

परसाई, ह. (1968). *आलोचना*.

परसाई, ह. (8 नवंबर 1964). *धर्मयुग*. मुक्तिबोध के साथ .

परसाई, ह. (1965). *राष्ट्रवाणी: वह तेजस्वी पीड़ा*.

पुंजाणी, ड. क. (1983). *हिन्दी का पत्र-साहित्य*. अजमेर : आशीष प्रिन्टर ब्रह्मपुरी .

प्रसाद, ड. र. *तार सप्तक के कवियों की समाज चेतना*.

प्रसाद, ड. र. (2005). *तार सप्तक के कवियों की समाज चेतना*. नयी दिल्ली : वाणी प्रकाशन .

मदारिया, श. म. *गजानन माधव मुक्तिबोध: सांप और सीढ़ी का खेल*.

माचवे, प. (1964). *धर्मयुग: दिल्ली में मुक्तिबोध*.

मिश्र, र. (२०१४). *छत्तीसगढ़ में मुक्तिबोध*. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन .

मुक्तिबोध. *कामायनी एक पुनर्विचार*.

मुक्तिबोध के पत्र. (1965).

मुक्तिबोध. *चांद का मुंह टेढ़ा है*.

मुक्तिबोध द्वारा राज्यपाल मध्यप्रदेश भोपाल के लिए तैयार किया गया स्पष्टीकरण.

मुक्तिबोध. *मेरी पुस्तक के विरुद्ध आंदोलन की एक संक्षिप्त रूप-रेखा- स्पष्टीकरण*.

मुक्तिबोध. *राष्ट्रभारती: मेरी मां ने मुझे प्रेमचन्द्र का भक्त बनाया*.

मेहता, न. (1998). *मुक्तिबोध: एक अवधूत कविता*. इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन .

राष्ट्रवाणी. (1965).

वर्मा, म. (2004). *लक्षित मुक्तिबोध*. नई दिल्ली : नेशनल पब्लिकेशन .

वर्मा, म. (2004). *लक्षित मुक्तिबोध*. नई दिल्ली : नेशनल पब्लिकेशन .

वर्मा, श. (1965). *ज्ञानोदय: ब्रह्मराक्षस का शिष्य*.

वर्मा, श. (1965). *मुक्तिबोध के पत्र*.

शर्मा, ज. (1983). *गजानन माधव मुक्तिबोध: व्यक्तित्व और कृतित्व*. जयपुर : पंचशील प्रकाशन .

शर्मा, ज. *मुक्तिबोध: व्यक्तित्व और कृतित्व*.

शर्मा, ड. श. (1977). *मुक्तिबोध का साहित्य: एक अनुशीलन .* दिल्ली : इंद्रप्रस्थ प्रकाशन .

शर्मा, प. *भोपाल में मुक्तिबोध.*

शर्मा, र. *प्रगतिशील काव्यधारा और केदारनाथ अग्रवाल .*

शर्मा, व. (2004). *मुक्तिबोध की आत्मकथा .* मेरठ : संवाद प्रकाशन .

शर्मा, व. (२००४). *मुक्तिबोध की आत्मकथा .* मेरठ : संवाद प्रकाशन .

शर्मा, व. (२००४). *मुक्तिबोध की आत्मकथा .* मेरठ : संवाद प्रकाशन .

शर्मा, व. (२००४). *मुक्तिबोध की आत्मकथा .* मेरठ : संवाद प्रकाशन .

सं.गौतम. *गजानन माधव मुक्तिबोध.*

सामोरेकर, ड. प. (2000). *मुक्तिबोध के काव्य में मार्क्सवादी चेतना .* कानपुर : विद्या प्रकाशन .

सिंह, ड. व. (1978). *मुक्तिबोध: काव्यबोध का नया परिप्रेक्ष्य .* जयपुर : पंचशील प्रकाशन .